कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

श्री कृष्ण

[पौराणिक नाटक]

लेखक

चतुर्भुज, ए० ए०

साधना मन्दिर · भिखनापहाड़ी · पटना-४

फोन: २६४२१

प्रकाशक
साधना-मंदिर
पटना--४

"मगध कलाकार', बख्तियारपुर से क्रय किया हुआ

मूल्य १.५० रुपये

मुद्रक
रामनरेश सिंह
वाल्मीकि प्रेस
पटना--४

INTRODUCTION

Shri Chaturbhuj M. A. who has securely established his reputation as a front-rank dramatist in Hindi literature, has now turned his skilled hand to the portrature of the sublime. He has dramatised the life and career of Lord Shri Krishna, asserted in the Bhagavata Purana as God perfect in human form. The mission of Shri Krishna was the establishment of a kingdom of righteousness on earth. India was then suffering from a plethora of military power and martial spirit exhibited by the Kshtriya rulers of diverse principalities. The political and spiritual unification of India was a sore desideratum. But the rivalries and petty jealousies of the hundred and one princelings presented seemingly insurmountable barriers against the fulfilment of this ideal.

The kingdom of Heaven had to be established on the pillars of justice; equity and perfect righteousness. The humbling of the self-stultifying pride of the Kshatriya princes was a necessary evil. The greatness of Shri Krishna lies in the recognition of this necessity. The annihilation of Kansa's tyranny was the lowest rung of the ladder and consummation was reached when Yudhishira was acclaimed as the unrivalled Emperor and Lord Shri Krishna was declared to be the Purshottama.

This has been exhibited in the drama, and I have not the least doubt that this play will be hailed as the crowning achievment of Shri Chaturbhuj.

—Prof. SATKARI MOOKERJEE,

M. A., Ph. D.

Director, Nava Nalanda Mahavihar,

Former Head of the Deptt. of

Sanskrit, Pali & Philosophy,

Calcutta University.

19-10'56

लेखक की ओर से

(प्रथम संकरण से)

श्रीकृष्ण भारतीय संस्कृति के एक महान् पुरुष रहे हैं। श्रीकृष्ण सम्बन्धी बहुत बड़ा साहित्य उपलब्ध है जिसमें कल्पना और विश्वास पर आधारित भी बहुत-सी सामग्रियाँ हैं। श्रीकृष्ण का जन्म मथुरा-नरेश कंस के कारागार में हुआ था। इनके पिता का नाम वसुदेव था और माता का नाम देवकी। कंस अपने पिता उग्रसेन को कारागार में डालकर बलपूर्वक गद्दी पर बैठे थे। मगध-सम्राट् जरासन्ध कंस के श्वसुर थे। कंस का वध करके कृष्ण ने मथुरा की गद्दी पर उग्रसेन को पुनः आसीन कराया।

जरासन्ध ने सत्रह बार मथुरा पर आक्रमण किया। अन्त में श्रीकृष्ण ऊब कर, दूर चले गये और द्वारकापुरी बसा कर वहीं बस गये।

प्राचीन काल में मगध के एक बलशाली राजा 'दीर्घ' थे जिनका बध हस्तिनापुर-नरेश पाण्डु ने राजगृह में ही किया था। 'दीर्घ' के बाद जरासन्ध मगध-सम्राट् हुए। ये प्रचण्ड वीर थे। चेदिराज शिशुपाल इनके प्रधान सेनापति थे। कारूप के राजा वक्र, कारभ के राजा मेघवाहन, प्राग्योतिष के राजा भगदत्त, युधिष्ठिर के मामा पुरुजित, बंग-पुण्ड किरात के राजा वसुदेव, कुण्डनपुर के राजा भीष्मक आदि जरासन्ध की प्रभुता मानते थे। कुछ राजकुल जरासन्ध के भय से दूर चले गये थे। अनेक राजागण जरासन्ध के कारागार में बन्दी थे। जरासन्ध पशु की भाँति इन राजाओं की बलि देना चाहते थे। द्वन्द में भीम ने जरासन्ध का वध किया। जरासन्ध के बाद उनके पुत्र सहदेव मगध-सम्राट् हुए जो महाभारत-युद्ध में पान्डवों की ओर से लड़े और द्रोणाचार्य द्वारा मारे गए।

इस नाटक में जरासन्ध-कृष्ण युद्ध, कृष्ण-कालयवन, रुक्मिणी-हरण, जरासन्ध-वध और शिशुपाल-वध आदि प्रमुख घटनाएँ हैं। "श्रीकृष्ण" पौराणिक के साथ-साथ ऐतिहासिक नाटक भी हो गया। ऐतिहासिक नाटक लिखने में कठिनाई इस बात की है कि यदि इतिहास की रक्षा की जाय तो नाटक का दम टूट जाय और यदि नाटक की रक्षा हो तो इतिहास की हत्या हो जाय। विशेष कर रंगमंच के योग्य नाटक लिखने में बहुत सावधान रहना पड़ता है। सौंदर्य-रक्षा के लिए इस नाटक में कहीं-कहीं पर जान-बूझ कर कल्पना का सहारा लिया गया है। कालयवन की मृत्यु की घटना ऐसी ही काल्पनिक है, जब कि पुराणों में उसकी मृत्यु का वर्णन कुछ और तरह से है।

श्रीमती विन्ध्वासिनी देवी का एक गीत इस नाटक में है। हम इनके कृतज्ञ हैं।

त्रिपिटिक सम्पादन विभाग — चतुर्भुज
नव नालन्दा महाविहार — ७-१०-'५६
नालन्दा (पटना)

श्रीकृष्ण

पात्र-परिचय और अभिनय की प्रथम रजनी के कलाकार

पुरुष

जरासन्ध—मगध-सम्राट्	—जयनन्दन प्रसाद सिन्हा
शिशुपाल—सम्राट् के सेनापति	—पी० डी० वर्मा
कालावन—पहाड़ी राजा	—मंगल मैत्री
श्रीकृष्ण—देवकी पुत्र	—चतुर्भुज (लेखक)
बलराम—रोहिणी-पुत्र	—रामेश्वर प्रसाद
रुक्म—रुक्मिणी के भाई	—अनन्त कुमार
युधिष्ठिर—पाण्डव	—चक्रधर
भीम— ,,	—मोहम्मद युनुस
अर्जुन— ,,	—शिशिर कुमार
राजागण— ,,	—हफीज, निखिल आदि

स्त्री

अस्ती—कंस की रानी, जरासन्ध की कन्या	—कुमारी रत्ना
रुक्मिणी—कुण्डनपुर की राजकुमारी	—कुमारी आभा

०

सर्वप्रथम ता० १७-२-५१ को वीणापाणि-अर्चना के अवसर पर "मगधकलाकार" द्वारा बख्तियारपुर के रंगमंच पर श्री चतुर्भुज (लेखक) के निर्देशन में अभिनीत ।

०

श्रीकृष्ण

प्रथमांक

प्रथम दृश्य

स्थान : राजगृह—सम्राट् जरासन्ध का प्रासाद।
काल : प्रभात।

(सम्राट् जरासन्ध और उनके सेनापति शिशुपाल बातें कर रहे हैं।)

जरासन्ध : सेनापति शिशुपाल, क्या यह समाचार सत्य है कि मथुरापति कंस का वध एक बालक के हाथों हुआ है?

शिशुपाल : सम्राट्, यह सत्य है। वसुदेव के पुत्र कृष्ण ने छल से मथुरा-नरेश कंस का वध किया है। जनता ने कृष्ण को सिंहासनासीन करना चाहा। लेकिन कृष्ण ने अस्वीकार कर दिया और कंस के वृद्ध पिता उग्रसेन को फिर से शासक बनाया।

जरासन्ध : वृद्ध उग्रसेन! कायर!—और मेरी पुत्री अस्ती की क्या दशा हुई शिशुपाल?

शिशुपाल : मथुरा की महारानी अस्ती अब तक जीवित हैं सम्राट्।

जरासन्ध : सेनापति याद आता है वह समय जब हमने कंस के शासन-काल में मथुरा पर आक्रमण किया था। कंस के शौर्य के आगे मेरी सेना परास्त हो गयी थी; हम और तुम बंदी हो गये थे। उसके वीरत्व

पर मुग्ध होकर मैंने अपनी कन्या अस्ती का विवाह कंस के साथ कर दिया था। आज वही कंस एक सामान्य बालक से मारा गया!—मुझे तो विश्वास ही नहीं होता।

शिशुपाल : कृष्ण सामान्य बालक नहीं है सम्राट्। उसकी पूजा मथुरा के घर-घर में हो रही है। लोग उसे ईश्वर मानने लगे।

जरासन्ध : ईश्वर! ईश्वर होना आसान नहीं है सेनापति।

शिशुपाल : यह मगध साम्राज्य के लिए कलंक की बात है। सम्राट् कृष्ण हमारा शत्रु है। हमलोग अवश्य इस हत्या का प्रतिशोध लेंगे।

नेपथ्य से अस्ती : पिताजी! पिताजी!!

जरासन्ध : शिशुपाल!—सुनो वह पुकार! यह मेरी पुत्री का करुण स्वर है अभागिनी बेटी!

(अस्ती का विधवा-वेश में प्रवेश। अस्त-व्यस्त वेश : आँखों में आँसू। शिशुपाल का नतमस्तक प्रस्थान।)

अस्ती : पिताजी! पिताजी!! (जरासन्ध के पैरों के पास गिरती है।)

जरासन्ध :-(करुण स्वर में) अभागिनी बेटी मेरी, मेरा सोचा हुआ टूट गया। आशाओं का दृढ़ प्राचीर एक प्रबल भूचाल से चूर-चूर हो गया। तुम्हें कंस की पटरानी बनाकर मैंने सोचा था कि पिता के एक बहुत बड़े उत्तरदायित्व से मैं मुक्त हो गया। क्या जानता था कि भाग्य मुझ पर हँस रहा है। आज वह

दिन भी आया कि पिता अपनी कन्या को विधवा वेश में देख रहा है।

अस्ती : पिताजी, मैंने अपनी समस्त लज्जा धोकर अपने पति के साथ सती होने से अस्वीकार कर दिया—इसलिए नहीं कि मुझे अपनी जान का मोह है, बल्कि इसलिए कि मैं अपने पति की मृत्यु का प्रतिशोध लूँगी। इस कामना को लेकर आज मैं आपकी सेवा में आई हूँ। मेरी सहायता कर सकेंगे ?

जरासन्ध : अवश्य कर सकूँगा। मैं अपना सम्पूर्ण राज्य, अपना जीवन, तुम्हारे लिए छोड़ सकता हूँ। बोलो, तुम्हें क्या चाहिए ?

अस्ती : पिताजी, नारी का समस्त संकोच, दया, लज्जा, शील मैंने खो दिया है। मेरे पास अब केवल बची हुई -। हिंसा, प्रतिशोध और बदले की भयानक आग। कृष्ण ने मेरे पराक्रमी पति का बध करके सिन्दूर रेखा मिटायी है, मेरे समस्त वैभव और सुख [illegible]ला है। मैं भी भूखी सिंहनी की भाँति उसका उष्ण रक्त पीना चाहती हूँ, क्रोध फुफकारती हुई नागिन की भाँति डँसकर उसे मिटा देना चाहती हूँ। पिताजी, मैं आपकी मातृहीना कन्या हूँ। आप की छाती पर खेल खेलकर मैंने बचपन का लाड़-प्यार बिताया है। क्या आप अपने रण-कौशल से कृष्ण को बन्दी नहीं बना सकते हैं—चुप मत रहिए। बोलिए बोलिए पिताजी !

जरासन्ध : तुम मुझे मथुरा पर आक्रमण करने के लिए कहती हो ?

अस्ती : आपकी विधवा कन्या की एक मात्र इच्छा है कि कृष्ण का सर्वनाश हो— चाहे जैसा भी हो।

जरासन्ध : यही होगा अस्ती। मैं मथुरा पर आक्रमण करूँगा। प्रथम बार मैंने आक्रमण किया था दिग्विजय की लालसा से। इस बार आक्रमण करूँगा प्रतिहिंसा की लालसा से।

अस्ती : तो फिर प्रतिज्ञा कीजिये पिताजी कि अपनी कन्या की यह एकमात्र इच्छा आप अवश्य पूरी करेंगे। मैं आप से और कुछ नहीं चाहती, आप के रण-कौशल को देखना चाहती हूँ।

जरासन्ध : प्रतिज्ञा करता हूँ अस्ती, कृष्ण से प्रतिशोध लूँगा। मथुरा पर आक्रमण करूँगा। जब तक मैं विजय प्राप्त नहीं करूँगा, कृष्ण को यथोचित दण्ड नहीं दूँगा तब तक यह युद्ध चलेगा। तुम दूर से आ रही हो। जाओ, आराम करो। जो होना था, वह हो गया। अब रोना बेकार है। जाओ महल के भीतर

अस्ती : जो आज्ञा पिताजी (धीरे-धीरे प्रस्थान)।

जरासन्ध : क्षुद्र कृष्ण की यह स्पर्द्धा ! कंस की मृत्यु कृष्ण के हाथ से हो ?—इस पर विश्वास नहीं होता। इसके भीतर कोई षड्यन्त्र है। फिर भी कृष्ण मेरा शत्रु है।— भीषण शत्रु। लो, शिशुपाल आ गया।

(शिशुपाल का प्रवेश)

जरासन्ध : सेनापति शिशुपाल, सेना तैयार करो और अविलम्ब मथुरा पर धावा बोल दो।

शिशुपाल : यही समय है सम्राट् ! सुना है कृष्ण और उसके भाई बलराम इस समय कहीं बाहर गये हुए हैं। मथुरा के शासक हैं वृद्ध उग्रसेन।

जरासन्ध : वृद्ध उग्रसेन ! वह भी ठीक रहेगा। उग्रसेन को समाप्त करने के लिए अधिक चेष्टा करनी पड़ेगी। मथुरा को हस्तगत करने पर कृष्ण और बलराम को भी पीस डालूँगा।

शिशुपाल : मेरी भुजाएँ फड़क रही हैं, तलवार म्यान से निकलने के लिए तैयार है। आपकी आज्ञा मिल गयी। आप देखेंगे कि मथुरा की ईंट से ईंट बजाकर रहूँगा। धरती को रक्त से लाल कर दूँगा। उग्रसेन को बन्दी बनाऊँगा। मैं अभी ससैन्य मथुरा की ओर जाता हूँ। (प्रस्थान)

जरासन्ध : कृष्ण ! मथुरा !! उग्रसेन !!!—सबका सर्वनाश होगा। सबका सर्वनाश होगा। (सवेग जाना)

———

द्वितीय दृश्य

स्थान—एक साधारण घर

(श्रीकृष्ण अपनी मुरली को ठीक कर रहे हैं। इसी बीच उनके भाई बलराम का आवेश में प्रवेश।)

बलराम : कन्हैया ! कन्हैया !!

कृष्ण : क्या है दाऊजी ?—आप घबराये हुए क्यों हैं ! कुशल तो है।

बलराम : बड़ा दुखद समाचार है।

कृष्ण : दुखद समाचर ! कुछ कहिए तो।

बलराम : जरासन्ध ने मथुरा की ओर प्रस्थान किया है ?

कृष्ण : क्यों ? कारण ?

बलराम : तुम मूर्ख हो कृष्ण। कुछ समझते नहीं।

कृष्ण : दाऊजी, क्रोध न कीजिए। बताइए न, बात क्या है ?

बलराम : तुम्हें मुरली का साथ छूटे तब तो कुछ समझो। पहले मुरली इधर दो।

कृष्ण : (मुरली छिपाते हुए और मुस्कुराते हुए) मुरली मेरी जीवन-संगिनी है दाऊजी। इसे मत छीनिए।

बलराम : तुम्हारी मुरली और उसकी धुन से मैं तंग आ गया हूँ। विपत्ति सिर पर है और तुम्हें कुछ भी चिन्ता नहीं।

कृष्ण : चिन्ता कैसी ? न विपत्ति है और न चिन्ता। अब तो केवल मुरली है—संगीत है। बस।

बलराम : कृष्ण, तुम्हारा मसखरापन मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।

कृष्ण : यह तो आपकी गरम-गरम बातों से मालूम हो रहा है। पर कारण भी तो कहिए !

बलराम : तो सुनो, जरासन्ध और शिशुपाल बिजली की चाल से अपनी पूरी सेना लेकर मथुरा पर चढ़ाई करने के

लिए निकल पड़े। मथुरा में कंस के मारने के बाद बहुत गड़बड़ी फैल गयी है। महाराज उग्रसेन घबड़ा गये हैं। उन्होंने हम दोनों को याद की है।

कृष्ण : तो दाऊजी, मेरी बात सुनिए।

बलराम : कहो।

कृष्ण : क्रोध न कीजिए। स्पष्ट कह देना अच्छा है। मैं अब मथुरा नहीं जाऊँगा। कंस-वध के बाद से मुझ में एक उदासीनता आ गयी है। मुझसे अब युद्ध नहीं होगा।

बलराम : (साश्चर्य) यह क्या कहते हो कृष्ण!

कृष्ण : ठीक कहता हूँ दाऊजी। इस झंझट का अभी अन्त नहीं होगा। इससे कभी शान्ति नहीं मिलेगी।

बलराम : कृष्ण, तुम भूल गये अपने लक्ष्य को। भूल गये इस आश्वासन को जो तुमने महाराज उग्रसेन को राज-मुकुट सिर पर रखते समय दिया था। भूल गये ब्रज की जनता की दुखभरी पुकार को। मुझे विश्वास नहीं होता कि जिस कृष्ण के भोलेपन और महान विक्रम के कारण घर-घर उसकी पूजा होने लगी है, वह भावना के सिन्धु में अपने को डुबो देगा।

कृष्ण : दाऊजी...

बलराम : कृष्ण, भूलो मत कि भावना से कर्त्तव्य ऊँचा है। कर्त्तव्य तुम्हें पुकार रहा है। उसे पहिचानो। मैं जानता हूँ कि तुम सांसारिक झंझटों से ऊब गये हो। पर मेरे भोले भाई, विपत्ति से भाग कर कोई विजयी

नहीं हो सकता। सामने लड़कर ही विपत्ति पर विजय पायी जा सकती है।

कृष्ण : दाऊजी...

बलराम : कृष्ण, तुम गोपाल हो। तुम्हारे बिना व्रज की गायें तड़प रही हैं। तुमने कंस रूपी सिंह से व्रज की जनता को बचाया है। जरासन्ध रूपी काल से फिर से बचाना होगा। यदि तुम नहीं आओगे तो पहले का सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा।

कृष्ण : दाऊजी...

बलराम : कृष्ण व्रज तुम्हें पुकार रहा है। तुम्हारी जननी जन्म-भूमि पुकार रही है। पिता जी तुम्हें पुकार रहे हैं। माँ देवकी तुम्हें पुकार रही है। कृष्ण हताश न होओ। तुम यादव वीर हो। तुम्हारा रक्त उष्ण है। चलो मेरे साथ। चलो, मगध की सेना से युद्ध करें। चलो।

कृष्ण : मैं सचमुच अपने को भूल रहा था। (पथ भ्रष्ट हो गया था। आपने मुझे मेरे कर्त्तव्य का ज्ञान कराया है। दाऊजी, चलिए मथुरा की ओर)। जरासन्ध और शिशुपाल की सेना को भूमि राशि की भाँति उड़ाकर ही रहूँगा। हो युद्ध। एक बार—एकबार फिर (सवेग प्रस्थान)।

बलराम : ये ही तो मेरे छोटे भाई के योग्य शब्द हैं। मैं जानता था, कृष्ण महान हैं। और महान रहेगा।

तृतीय दृश्य

स्थान—समर-भूमि का एक भाग

(नेपथ्य में कोलाहल हो रहा है। "भागो-भागो" की चिल्लाहट। "आह-आह" की ध्वनि। हथियारों की झंकार। जरासन्ध और शिशुपाल का समर-वेश में प्रवेश।)

जरासन्ध : हाः हाः हाः! मथुरा की गौरव-राशि को मिट्टी में मिला दो।

शिशुपाल : महाराज! मथुरा-नरेश उग्रसेन रणभूमि मेरी तलवार की चोट खाकर गिर पड़े हैं। उनकी सेना तितर-बितर हो रही है। मथुरा के सैनिक भाग रहे हैं।

जरासन्ध : मैं जानता था कि उग्रसेन मेरी सेना के सामने ठहर नहीं सकेंगे। उन्हें कृष्ण-बलराम पर भरोसा था। लेकिन वे लोग तो पहले ही जान बचाकर भाग गये।

शिशुपाल : लेकिन महाराज, कृष्ण कहाँ छिपा है?

जरासन्ध : हाँ शिशुपाल, इस नरहत्या से कोई लाभ नहीं। यदि कृष्ण अपने चंगुल में नहीं आये। तुम उसे बन्दी बनाओ। जहाँ भी हो पकड़ लो। मेरी शत्रुता तो कृष्ण के साथ है। उसे बन्दी बनाना होगा।

शिशुपाल : लेकिन महाराज···

जरासन्ध : प्रतिवाद न करो सेनापति। मुझे मालूम है कि तुममें असीम बल और शौर्य है। आज की जीत तुम्हारे ही कारण होगी। विजयोपरान्त मैं तुम्हें प्रचुर पुरस्कार दूँगा। लेकिन यह विजय तबतक अधूरी है जबतक हमलोग कृष्ण को बन्दी नहीं बनाते।

शिशुपाल : अच्छी बात है। मैं अपने सैनिकों को चारों ओर भेजता हूँ। कृष्ण का पता अवश्य लग जायगा।

(श्रीकृष्ण और बलराम का प्रवेश । कृष्ण के हाथ में मुरली और बलराम के हाथ में गदा।)

कृष्ण : सैनिक को भेजने की आवश्यकता नहीं हैं सेनापति कृष्ण स्वयं उपस्थित है।

जरासन्ध : कायर कृष्ण ! तुम्हें पता है कि आज के युद्ध में मथुरा की हार हुई है। तुम्हारे पूज्यनीय महाराज उग्रसेन घायल होकर मरणोन्मुख हैं ?

कृष्ण : (मैं दूर से आ रहा हूँ। मुझे यह सब कुछ मालूम नहीं है) महाराज उग्रसेन घायल हैं—इसमें चिन्ता कैसी। शोक तो केवल इस बात की है कि हमलोग विलम्ब से आये फिर, भी आपकी विजय अधूरी हैं।

जरासन्ध : विजय-पूर्त्ति में अब बाधा कैसी ?

बलराम : बाधा मैं डालूँगा, कृष्ण डालेगा। हम दोनों को परास्त किये बिना आप विजयी नहीं हो सकते मगध-सम्राट्।

जरासन्ध : कृष्ण, तुम ही इस अनर्थ की जड़ हो। यदि तुम कंस का बध नहीं करते तो मथुरा को आज यह दिन देखना नहीं पड़ता।

कृष्ण : यदि मैं ही इस अनर्थ की जड़ हूँ तो इतने निर्दोष व्यक्तियों का बध क्यों किया जा रहा है ?) घरों में आग क्यों लगायी जा रही है ? आप तो मगध-सम्राट् हैं, राजाओं के राजा हैं। निर्बल, वृद्ध आदि को सताकर आपने वीर-धर्म को कलंकित किया है।(शत्रुता मेरे साथ थी, इन नागरिकों के साथ नहीं।

जरासन्ध : मगध-सम्राट् जरासन्ध तुम्हारा उपदेश सुनने के लिए नहीं आये हैं।

कृष्ण : मैं जानता हूँ कि पुत्री के वैधव्य ने आपको पागल बना दिया है फिर भी कुछ सोचना चाहिए था............ अच्छी बात है, एक बार मेरे साथ युद्ध कीजिए।

जरासन्ध : तुम्हारे साथ युद्ध ? मुरली से लड़ोगे क्या ? पहले अपनी कोमल काया की ओर देखो। तुम्हारा शरीर नाच-गान के लिए बना है, यह युद्ध करने के लिए नहीं।

बलराम : मुरलीवाला कोमलांग है, यह सत्य है। पर रोहिणी-पुत्र बलराम तो आपके आगे ठहर सकेगा।

जरासन्ध : तुम बलराम हो ? कृष्ण के भाई ? बड़े उद्दण्ड हो।

बलराम : मैं कुछ सुनना नहीं चाहता सम्राट्। वीरत्व हो तो मथुरा की भूमि पर बलराम से युद्ध कीजिए।

जरासन्ध : जरासन्ध को ललकारना आसान नहीं है बलराम।

बलराम : मैं जानता हूँ। फिर भी सम्राट् मेरे शत्रु हैं।

जरासन्ध : शिशुपाल ले आओ मेरा गदा।

(शिशुपाल का प्रस्थान। गदा के साथ प्रवेश, गदा देना।)

जरासन्ध : शिशुपाल तुम हम दोनों का रणकौशल देखो। पर ध्यान रखना, कृष्ण भागे नहीं।

कृष्ण : (कुछ हँसकर) आप चिन्ता न करें सम्राट्। आपके गिरने पर ही कृष्ण हटेगा।

(गदायुद्ध। जरासन्ध की गदा हाथ से छूट जाती है। बलराम उनकी छाती पर गदा प्रहार करते हैं। जरासन्ध गिरते हैं। बलराम दूसरा प्रहार जरासन्ध के सिर पर करना चाहते हैं। शिशुपाल तलवार खींच लेते हैं।)

कृष्ण : शिशुपाल, तलवार को म्यान में डाल दो। जरासन्ध को सँभालो। ऐसा न करो कि तुम्हारी छोटी-सी भूल से सम्राट् और तुम-दोनों अपनी जान को खो बैठो। जाओ आज के दिन तुम्हारी हार रही। आइए ...... दाऊजी।

(कृष्ण और बलराम का प्रस्थान)

शिशुपाल : महाराज ! महाराज !!

जरासन्ध : (होश में आकर) आह, भयंकर भूल हुई ! शिशुपाल शत्रु का पीछा करो। कृष्ण को बन्दी बनाओ।

(दोनों का आवेश में प्रस्थान)

———

चतुर्थं दृश्य

स्थान—राजगृह में जरासन्ध का महल। समय—रात

(विधवा-वेश में महारानी अस्ती विक्षिप्त भाव में टहल रही है।)

अस्ती : नहीं, अब और नहीं। धैर्य की भी एक सीमा होती है। पिताजी ने एक-एक कर सोलह बार मथुरा पर आक्रमण किये, पर टिक न सके। हर बार पराजय ही हाथ आया। सत्रहवीं बार फिर उन्होंने मथुरा पर चढ़ाई की है। इस बार अधिक से अधिक सेना है। इस बार अवश्य उनकी विजय होगी। इस बार कृष्ण को झुकना पड़ेगा। मेरे अन्तराल में प्रतिहिंसा की अग्नि धधक रही है। मैं जली जा रही हूँ। शीघ्र ही कुछ निर्णय हो जाये तो उत्तम है।

नेपथ्य में : सम्राट् जरासन्ध की जय !

अस्ती : (प्रसन्न होकर) पिताजी आ रहे हैं। इस बार अवश्य उनकी जय हुई है। अवश्य उनकी जय हुई है। मैं आगे बढ़कर अपने वीर पिता की अभ्यर्थना करूँ !

(जरासन्ध का प्रवेश—नतमस्तक)

अस्ती : आइये पिताजी ! मैं आपकी इस महान् जय से बहुत प्रसन्न हूँ। आपने अपनी कन्या की अभिलाषा पूरी कर दी। (नेपथ्य में संकेत करके) प्रहरी, ब्राह्मणों के भोजन की व्यवस्था करो। समस्त राजगृह को दीपमाल से उजला कर दो। स्वर्ण-भंडार से ब्राह्मणों को

दान दिलाओ। सारी राजधानी में उत्सव का आयोजन करो। जाओ।

जरासन्ध : (विषण्ण बोली में) अस्ती !

अस्ती : क्यों पिताजी, आपकी इस महान् जय में प्रजा उत्सव मनायेगी, इसमें आपको कौन-सी आपत्ति है ?

जरासन्ध : तुम अपने पिता की हँसी उड़ा रही हो अस्ती।

अस्ती : कैसे पिताजी ?

जरासन्ध : मैं फिर पराजित हुआ हूँ बेटी।

अस्ती : (जैसे सिरपर वज्र गिरा हो) पिताजी !

जरासन्ध : बेटी, फिर कृष्ण की ही जीत रही। सत्रहवीं बार भी मैं हार गया।

अस्ती : (कुछ ठहर कर, विषादमय पर संयत स्वर में) पिताजी, मैं आपके इस कलंक की जड़ हूँ। मेरे ही कारण वीर मागधी सेना बार-बार कट रही है। मैं सचमुच अकल्याण की शिखा और मगध की काल-निशा हूँ।

जरासन्ध : अस्ती, तुम्हारी प्रताड़ना बड़ी तीखी है। इसे बन्द करो।

अस्ती : मैं आपको प्रताड़ित नहीं करती, अपमानित नहीं करती, बल्कि अपने किये पर रोती हूँ। मुझे लगता है, जैसे ईश्वरीय प्रेरणा के विरुद्ध मैं कुछ करना चाहती हूँ। इसी से मुझे असफलता मिल रही है। यह रक्तपात व्यर्थ है। इसमें केवल मथुरा

और मगध की शक्ति का ह्रास होगा)। इस युद्ध को अब बन्द कीजिये।

जरासन्ध : अस्ती, तुम नारी हो, इसी से ऐसा कहती हो। जरासन्ध की वीर-प्रतिज्ञा को हीन न समझो। जब तक मैं विजयी न होऊँगा, चलता जायगा यह युद्ध। यह जरासन्ध की आन का युद्ध है। विजय या मृत्यु एक का आलिंगन करके रहूँगा। इतने युद्धों के बाद मैंने पाया है कि कृष्ण एक साधारण पुरुष नहीं है। उसकी कोमल काया के भीतर भयानक शौर्य कूट-कूट कर भरा है। अस्ती, क्या बताऊँ? जिस तरह प्रचण्ड गर्जन करते हुए काले बादल अपनी विराट-शक्ति से एक ही वार में वर्षा द्वारा प्रलय को आमन्त्रित करने का स्वप्न देखते हैं, वैसे ही यहाँ से प्रस्थान करने के समय कृष्ण को परास्त करने के लिए अनेक युक्तियों को सोच लेता हूँ। मैंने इतना अधिक किसी वीर से युद्ध करते समय नहीं सोचा था। लेकिन, रणभूमि में ज्यों कृष्ण से मेरा साक्षात होता है, मैं अपनी समस्त युक्तियों को भूल जाता हूँ। कृष्ण की मधुर मुस्कान में स्वागत रहता है। उस छवि का वर्णन कैसे करूँ? मैं तय नहीं कर पाता कि वह नर है या नारायण, शत्रु है या मित्र· भीषण है या कोमल !—समस्त वीरता एकत्रित करके युद्ध करता हूँ, कठोर शब्द बोलता हूँ, लेकिन अन्त में पराजय हाथ लगती है। आश्चर्य तो यह है कि हाथ में पाकर भी वह मुझे छोड़ देता है फिर नियन्त्रित करता है!

अस्ती : मैंने कृष्ण को अबतक नहीं देखा है। आपने शत्रु होकर कृष्ण की महिमा मान ली। तब वह अवश्य ही कोई महान व्यक्ति होगा। लेकिन मेरा हृदय सतत प्रतिहिंसा के लिए प्रेरित हो रहा है। लाख चेष्टा करने पर भी मैं अपने स्वामी का वह स्पंदनहीन शरीर-पिण्ड नहीं भूल रहा हूँ। मेरे वीर पति की मृतात्मा निरन्तर मेरे प्रतिशोध की ज्वाला को उत्तेजित कर रही है। लेकिन, लगता है कि यह प्रयास विधि के विधान के विरुद्ध है। युद्ध से केवल हानि है, कोई लाभ नहीं।

जरासन्ध : अस्ती, इस बार मैंने जंगली राजा कालयवन को बुला भेजा है। उसकी बर्बर और आसुरी सेना से सम्भव है कि कृष्ण पराजित हो जाय।

अस्ती : यह कालयवन कौन है पिताजी ?

जरासन्ध : कालयवन ने कभी सिर नहीं झुकाया है। उसके सिर को झुकाने का सम्मान तुम्हारे पिता को ही मिला। नीति से लड़ती है और भयानक शक्ति रखती है। कालयवन विधर्मी है, पर शत्रु के लिए काल है। इस बार युद्ध की प्रणाली बिलकुल बदल दूँगा। अब तुम जाओ, कालयवन आता ही होगा। उससे मन्त्रणा करनी है।

(अस्ती का धीरे-धीरे प्रस्थान)

जरासन्ध : (कुछ देर तक टहलते रहते हैं) अब मेरी आशा एक

मात्र कालयवन पर ही केन्द्रित है। वह अवश्य यह काम कर सकेगा !

(शिशुपाल का प्रवेश)

शिशुपाल : महाराज, कालयवन मुख्य द्वार पर उपस्थित है।

जरासन्ध : अच्छी बात है, मैं स्वयं उसकी अभ्यर्थना करूँगा। तुम वहीं रहो। मैं उसको लेकर अभी आता हूँ।

(प्रस्थान)

शिशुपाल : यह कैसी आश्चर्य का बात है कि क्षुद्र कृष्ण को परास्त करने के लिए मगध-सम्राट् जरासन्ध और चन्देरी-नरेश शिशुपाल सत्रह बार असफल रहे। यादवों का झण्डा ऊंचा ही रहा। आज असभ्य कालयवन से सहायता की भिक्षा माँगनी पड़ी। क्या सचमुच कालयवन इस काम को कर सकेगा जिसे हमलोग नहीं कर सके ?

(अस्ती का पुनः प्रवेश)

अस्ती : चन्देरी-नरेश !

शिशुपाल : कौन ? मथुरा की राजमहिषि ? मेरा अभिवादन स्वीकार करें। (प्रणाम करना)

अस्ती : मैंने पिताजी से कहा है कि वे अब युद्ध बन्द कर दें।

शिशुपाल : क्या यह मथुरा की रानी की आज्ञा है ?

अस्ती : आज्ञा नहीं, राय है। मैं अब मथुरा की महारानी नहीं महाराज जरासन्ध की विधवा कन्या हूँ, राजगृह

में शरण लेने आयी हूँ। मैं राय दे सकती हूँ, आज्ञा नहीं।

शिशुपाल : निराश न हो देवी। आशा की एक किरण अभी शेष है। अग्नि में मैंने ईंधन डाल दिया है। वह सुलगेगी ही, बुझेगी नहीं। मगध-सम्राट् पीछे नहीं हट सकते। इसमें उनका अपमान है। कालयवन को लेकर अन्तिम आक्रमण होगा।

(इसी बीच बातें करते जरासन्ध और कालयवन का प्रवेश। कालयवन अस्ती को देख लेता है। अस्ती वस्त्र सँभालती हुई शीघ्रता से चली जाती है।)

कालयवन : मैंने सब कुछ सुन लिया है सम्राट्। आपकी हार का बदला लूँगा मैं। कालयवन धन्य हुआ कि मगध-सम्राट् ने आज उसकी याद की।

जरासन्ध : मैं सत्रह बार पराजित हुआ हूँ कालयवन—सत्रह बार! यह बहुत बड़ा दाग है, जिसे तुम्हीं मिटा सकते हो! यदि तुमने कृष्ण पर विजय पायी तो निश्चय ही तुम्हें मुँह माँगा पुरस्कार दूँगा—मगध का अमूल्य स्वर्ण-भण्डार तुम्हारे पैरों पर अर्पित कर दूँगा। जो माँगोगे, दूँगा।

कालयवन : कालयवन यद्यपि जंगली और पहाड़ी राजा है, फिर भी उसे बुद्धि है। वह सम्राट् जरासन्ध के शब्दों से परिचित है। सम्राट् मैं तुरत अपनी विकट सेना लेकर मथुरा को घेर लेता हूँ। मेरे सैनिक मानव के वेश में दानव हैं। वे रक्त पीते

हैं, मांस खाते हैं और आकाश-पथ से पत्थरों की वर्षा करते हैं। यह युद्ध निराला होगा। कालयवन अवश्य विजयी होगा—आप चिन्ता न करें, जरूर।

(जरासन्ध का प्रस्थान)

कालयवन : क्यों जी, आपके साथ वह कौन स्त्री बातें कर रही थी ?

शिशुपाल : तुम नहीं जानते ?

कालयवन : जानते पर पूछता क्यों ?

शिशुपाल : यह सम्राट् की विधवा कन्या अस्ती है। इसके पति मथुरा-नरेश कंस थे जिनका वध कृष्ण ने किया है।

कालयवन : तो इस युद्ध का प्रधान कारण यही है ?

शिशुपाल : सम्राट् जरासन्ध अपनी इस कन्या को बहुत प्यार करते हैं। इसके वैधव्य का बदला कृष्ण से लेना चाहते हैं।

कालयवन : वैधव्य का बदला ? हाः हाः हाः !

शिशुपाल : इसमें हँसने की क्या बात है कालयवन ?

कालयवन : बदला लेकर क्या सम्राट् अपनी कन्या का वैधव्य दूर कर सकेंगे ?

शिशुपाल : दूर नहीं कर सकेंगे, पर अपराधी को दण्ड तो दे सकेंगे।

कालयवन : लेकिन इससे लाभ ?

शिशुपाल : तुम तो बड़े विचित्र पुरुष हो कालयवन। हमारा और तुम्हारा काम सम्राट् की प्रीति की आलोचना

करना नहीं है। हमलोगों को तो केवल उनकी आज्ञा का पालन करना है।

कालयवन : यह सत्य है। पर सारी बातें एक ही तरह से समाप्त हो सकती है।

शिशुपाल : कैसे ?

कालयवन : यदि किसी वीर राजा के साथ यह विधवा विवाह कर ले तो सारा झंझट मिट जाय।

शिशुपाल : (सक्रोध) असभ्य कालयवन ! तुम सीमा से बाहर होकर बातें कर रहे हो। तुम महरानी अस्ती और सम्राट् जरासन्ध के सम्मान के विरुद्ध बातें कर रहे हो। इसका परिणाम भयंकर होगा।

कालयवन : यदि स्त्री का पति मर जाय तो उसे पुनर्विवाह में दोष कैसा ?

शिशुपाल : आर्य विधवा पुनर्विवाह नहीं करती।

कालयवन : मैं यह नहीं जानता था चन्देरी-नरेश। मैं पहाड़ी राजा हूँ। मेरी सभ्यता अलग है। इस बात को मैं इतना महत्त्व नहीं देता।

शिशुपाल : नहीं देते क्यों कि तुम यवन हो, असभ्य हो, नीच हो।

कालयवन : (सक्रोध) शिशुपाल !

शिशुपाल : (वैसे ही स्वर में) कालयवन ! तुम अतिथि हो। क्षमा करता हूँ, सभ्यता से बातें करना सीखो।

(सवेग प्रस्थान)

कालयवन : पराजित शिशुपाल ! सभ्यता की डींग हाँकने वाले ! .... (कुछ देर तक टहलता रहता है)।

मैंने जबसे अस्ती को देखा है, अशान्त हो उठा हूँ। क्या कारण है? वह आर्य विधवा है, सम्राट् की कन्या है, मथुरा की महारानी है। ओह! इस भावना को अभी दूर करना होगा। पहले कृष्ण पर जय-प्राप्ति के उपाय!—देखा जायगा। (प्रस्थान)

(पटाक्षेप)

द्वितीयांक

प्रथम दृश्य

स्थान—रणभूमि

काल—प्रभात।

(छद्मवेश में श्रीकृष्ण और उनके भाई बलराम बातें कर रहे हैं।)

बलराम : देखते हो सामने कृष्ण।

कृष्ण : देख रहा हूँ दाऊजी।

बलराम : धूल उड़ रही है। शत्रु सेना इधर ही आ रही है।

कृष्ण : यादव सेना भी तैयार है। सत्रह बार हारने पर भी जरासन्ध की रण-कामना पूरी नहीं हुई। अट्ठारहवीं बार साहस बाँधकर फिर आया है।

बलराम : तुमने सुना नहीं क्या? इस बार उसके साथ पहाड़ी राजा कालयवन है। सुना हैं, कालयवन दानवी शक्ति से युद्ध करता है।

कृष्ण : दाऊजी, मैं आजतक नहीं समझ रहा हूँ कि इस नरसंहार की क्या आवश्यकता है?) प्रत्येक बार असंख्य वीर प्राणों की बलि दे रहे हैं, विधवाओं की संख्या बढ़ रही है, दुर्भिक्ष विकराल मुँह फाड़े आ रहा है। (दाऊजी आज इसके बारे में कुछ निर्णय करना ही पड़ेगा।

बलराम : कृष्ण, युद्ध से न ऊबो। वीरों की शक्ति घर में बन्द रखने के लिए नहीं होती, बाहर वीरता दिखलाने के लिए होती है। वीरों का रक्त देश भूमि को उर्वर बनाता है। तुम्हारी उदासीनता अच्छी नहीं है।

कृष्ण : दाऊजी, आपकी आज्ञा से मैंने सत्रह बार जरासन्ध की सेना से युद्ध किया। आपके आशीर्वाद और सहयोग से मथुरा का विजय-पताका आकाश में स्वच्छन्द गति से उड़ायी। आपकी प्रेरणा से अनगिनत शत्रुओं का मान मर्दन किया। लेकिन मुझे लगता है कि सब व्यर्थ है और सारी विपत्तियों का कारण मैं हूँ।

बलराम : तुम ? कैसे हो कृष्ण ?

कृष्ण : मैंने कंस का का वध किया है। जरासन्ध का क्रोध मुझ पर है। मेरे ही कारण वह ब्रजवासियों को बार-बार तंग किया करता है।

बलराम : तुम मूर्ख हो श्यामसुन्दर ?

कृष्ण : दाऊजी ठीक कहते हैं—मैं मूर्ख हूँ, मेरी मूर्खता के कारण बार-बार प्रलय आ रहा है।

बलराम : तो इसका प्रतिकार ?

कृष्ण : प्रतिकार है। मैं इस युद्ध से अलग हो जाऊ तो जरासन्ध किसी को कष्ट नहीं देगा। अनेक निर्दोष व्यक्ति बच जायेंगे।

बलराम : तुम इस युद्ध से, भागना चाहते हो—कभी नहीं होगा।

कृष्ण : आप तनिक थोड़ा सोचकर देखिये। एक व्यक्ति के लिए अनेक प्राणों की बलि देना कहाँ की बुद्धिमानी है। दाऊजी, मैं रण से भागता नहीं, मैं कायर नहीं हूँ। पर समय मुझे हटने के लिये कहता है। प्रलय को दूर करने के लिए मुझे हटना ही पड़ेगा।

बलराम : कृष्ण तुम बड़े हठीले हो। बचपन में माँ यशोदा को तुमने परेशान किया और अब अपने दाऊजी को। बताओ जाओगे कहाँ ?

कृष्ण : सौराष्ट्र के पार; समुद्र के बीच, द्वारिकापुरी बसाऊँगा। वहाँ पर रहूँगा।

बलराम : तुम्हारे प्रेम में पागल होकर यादव वीर भी चले जायेंगे।

कृष्ण : अच्छा ही रहेगा। उन्हें भी जाने दीजिए।

(नेपथ्य में रणवाद्य)

बलराम : सुनो रणवाद्य। शत्रु आ गये।

कृष्ण : आने दीजिए शत्रु को। मैं कालयवन से युद्ध करूँगा। आप जरासन्ध को देखें।

बलराम : और द्वारिका जाने की बात ?

कृष्ण : युद्ध करते-करते मैं कालयवन के छक्के छुड़ा दूँगा। इसी बीच उसे मथुरा से दूर ले जाऊँगा। वहीं से द्वारिका की ओर जाऊँगा। आप लोग पीछे से आइए।

बलराम : अच्छी बात है। ऐसा ही होगा। (जाना)

(कालयवन का प्रवेश। कुछ देर तक श्रीकृष्ण की ओर देखता रहता है।)

कालयवन : कौन हो तुम ?

कृष्ण : तुम्हें क्या चाहिए ?

कालयवन : मैं पूछता हूँ कि तुम कौन हो ?

कृष्ण : (अट्टहास) हाः हाः हाः !

कालयवन : तुम हँसते हो ?—तुम्हें कुछ डर नहीं है ?

कृष्ण : डर ? किससे ?

कालयवन : मुझसे ?

कृष्ण : तुमसे ? कौन हो तुम ?

कालयवन : मैं कालयवन हूँ ?

कृष्ण : नाम कुछ भयंकर अवश्य है; पर चेहरा तो देखा हुआ जान पड़ता है ?

कालयवन : तुमने मुझे कहाँ देखा है ?

कृष्ण : कहीं देखा अवश्य है । याद नहीं आता ।

कालयवन : मैं कहता हूँ कि तुमने मुझे पहले नहीं देखा है ।

कृष्ण : मैं कहता हूँ कि मैंने तुम्हें पहले अवश्य देखा है ।

कालयवन : बताओ, कहाँ देखा है ?

कृष्ण : पूर्वजन्म में । तुम थे घोड़ा और मैं था सवार ! तुम्हें जब चाबुक मारा करता था । याद है न तुम्हें ? याद करो भैया मेरे—याद करो ।

कालयवन : तुम मेरी हँसी उड़ाते हो लड़के ? बुरा होगा ।

कृष्ण : मुझे लड़का न कहो ? मैं तुम्हारा प्रधान शत्रु हूँ ।

कालयवन :प्रधान शत्रु ? क्या मतलब ?

कृष्ण : मैं तुम्हारा चिर-शत्रु कृष्ण । पहिचान लो मुझे ।'

कालयवन : कृष्ण हो ? नहीं असम्भव ।

कृष्ण : विश्वास करो, मैं कृष्ण हूँ ।

कालयवन : क्या तुमसे ही जरासन्ध बार-बार हारे हैं ?

कृष्ण : बार-बार नहीं जानता, पर सत्रह बार अवश्य हारे हैं ।

कालयवन : तो आज तुम्हें कालयवन से युद्ध करना पड़ेगा ।

कृष्ण : यह मुझे पहले से ज्ञात है मेरी तलवार भी तैयार है ।

कालयवन : तो फिर

कृष्ण : आ जाओ ।

(दोनों की तलवारें टकराती हैं, युद्ध करते हुए दोनों का एक ओर प्रस्थान ।

द्वितीय दृश्य

स्थान—राजगृह का राजप्रासाद ।

समय—रात ।

(एक चित्र टँगा है । सामने अस्ती है । हाथ में पुष्प है)

अस्ती : (कंस के चित्र से) मेरे प्रियतम ! मेरे यौवन-निकुञ्ज के पक्षी ! मेरे सर्वस्व ! आज आप मुझसे कितनी दूर हैं ! बहुत दिन बीते, मुझे निर्मम की भाँति त्याग कर आपने ऐसे लोक की यात्रा की जहाँ से लौटना

असम्भव है। इस दासी के नीर-भरे नयन की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। मैंने चाहा कि आर्य-ललना की भाँति अग्नि-पथ से आप के पास जाऊँ, पर जा न सकी। आपके अपूर्ण कार्य को पूरा करने के लिए रह गयी। कृष्ण का सर्वनाश करने के लिए जीवित रही। पर अब देखती हूँ कि मेरा निश्चय विधि के विधान के प्रतिकूल है। मैं बार-बार असफल नारी की दया, प्रेम, स्नेह - सब कुछ प्रतिहिंसा की अग्नि से जला चुकी हूँ। शान्ति नहीं, धैर्य नहीं। मेरे स्वर्गीय देव! बताओ मैं क्या करूँ?

(धीरे-धीरे कालयवन का प्रवेश)

कालयवन : महारानी!

अस्ती : (चौंककर) ?

कालयवन : मैं हूँ कालयवन।

अस्ती : कालयवन, मेरे एकान्त कक्ष में पिताजी के सिवा और कोई नहीं आ सकता। तुम कैसे आये?

कालयवन : चाहने पर क्या नहीं हो सकता? मैं आना चाहता था, आ गया।

अस्ती : आने का कारण?

कालयवन : आपको यह हर्षपूर्ण खबर देने आया हूँ कि इस बार कृष्ण के साथ युद्ध में मेरी जीत हुई।

अस्ती : कृष्ण कहाँ है?

कालयवन : (नतमस्तक) कृष्ण भाग गया। मैंने उसका बहुत पीछा किया पर, वह लापता हो गया। उसके सभी साथी भी मथुरा छोड़कर भाग गये। अब वह सिर नहीं उठा सकता।

अस्ती : जब तक कृष्ण का सिर है, वह उठा ही रहेगा। उसकी हार हार नहीं, जीत है कलयवन।

कालयवन : कैसे ?

अस्ती : वह जब बन्दी नहीं हुआ तो उसे दण्ड ही क्या मिला ?

कालयवन : मैंने मथुरा के नागरिकों पर खूब अत्याचार किया है। यह क्या कम है ?

अस्ती : कालयवन, मथुरा के नागरिक निर्दोष हैं। तुमने उन लोगों पर अत्याचार करके अन्याय किया है। शत्रु कृष्ण है, मथुरा के नागरिक नहीं। मुझे खेद है कि तुमने अर्थ का अनर्थ क्यों किया।

कालयवन : आपको प्रसन्न होना चाहिए। मैं तो आपसे पुरस्कार लेने आया हूँ।

अस्ती : तुम भूल रहे हो कालयवन। तुम मथुरा के नागरिकों को सताकर मथुरा की महारानी से पुरस्कार पाना चाहते हो ! यह तुम्हारा भ्रम है।

कालयवन : सम्राट् ने मुझसे प्रतिज्ञा की है कि वे विजयोपरान्त मुँहमाँगा पुरस्कार देंगे।

अस्ती : पिताजी ने तुमसे प्रतिज्ञा की है ?—सम्भव है। लेकिन कालयवन, राजगृह की कौन-सी वस्तु तुम्हें सबसे अच्छी लगी, बताओ।

कालयवन : यह बड़ा साधारण प्रश्न है, फिर भी कठिन है।

अस्ती : साधारण और कठिन ? (हँसकर) कुछ बताओ भी।

कालयवन : मैं आपके समक्ष नहीं बता सकता।

अस्ती : पिताजी और मैं दो नहीं हूँ। तुम शीघ्र बताओ। जरा सुनूँ कि कालयवन को कौन-सी वस्तु इतनी अच्छी लगी कि वह अपनी इच्छा का दमन किये बिना मेरे एकांत कक्ष में एकाएक घुस आया है।

कालयवन : यह सत्य है कि मैं अपनी इच्छा का दमन नहीं कर सका, इसी से यहाँ आ पहुँचा हूँ।

अस्ती : तो फिर बताओ तुम्हें क्या चाहिए।

कालयवन : महारानी......

अस्ती : बताओ कालयवन।

कालयवन : ओह! नहीं मैं वापस जाता हूँ।

अस्ती : तुम वापस नहीं जा सकते। क्या चाहिए तुम्हें ? बताओ।

कालयवन : कुछ नहीं, कुछ नहीं।

अस्ती : धन ?

कालयवन : नहीं।

अस्ती : पदवी ?

कालयवन : नहीं।

अस्ती : मथुरा का राज्य ?

कालयवन : नहीं।

अस्ती : मगध का स्वर्ण-भंडार ?

कालयवन : नहीं, नहीं, मुझे एक विचित्र वस्तु चाहिए। पहले आप प्रतिज्ञा करें कि वस्तु मुझे मिलेगी।

अस्ती : अवश्य मिलेगी।

कालयवन : तो......

अस्ती : रुको मत, कालयवन।

कालयवन : मुझे चाहिए आपका प्रेमदान।

अस्ती (हँसकर) प्रेमदान! तुम मेरी प्रजा हो—तुम्हें मेरा प्रेम पहले ही मिला है।

कालयवन :(नहीं, आप समझी नहीं। मैं आपके सौंदर्य का प्यासा हूँ, आप के प्रेम का भूखा हूँ,) आपके हृदय-प्रदेश का पथिक हूँ। देवी मेरी माँग पूरी करो—मुझे प्रणय भिक्षा दो।

अस्ती : कालयवन! होश में आओ।

कालयवन : मैंने अपना होश उसी समय खो दिया जिस समय मैंने प्रथम बार तुम्हें देखा था। शुभ्रवसना, मुक्त-कुन्तला, हास्य-वदना! आह! नारी का वह रूप मैं नहीं भूल सकता। तुम्हारी मूर्त्ति में, तुम्हारी काया में—एक आकर्षण है जो मुझे बार-बार अपनी ओर खींच रहा है।

अस्ती : कालयवन, समझकर बातें करो। मैं आर्य विधवा हूँ जिसकी समस्त अभिलाषा पति के साथ चली गयी—यह तो शरीर-पिंड है तुम्हारे सामने जीवन-हीन

प्राण-हीन ! अपने विचारों को बदल दो। विधवा से प्रेम की याचना न करो, आशीर्वाद की याचना करो, स्नेह की याचना करो।

कालयवन : मैंने इस पर अच्छी तरह सोचा है। तुम्हें देखते ही मैं अपना सब कुछ खो बैठा हूँ। सम्राट् के इसी पुरस्कार के लोभ और कामना की भूख ने मुझसे मथुरा-जय करायी। ना, मैं तुम्हारे द्वार से निराश होकर वापस नहीं जा सकता।

अस्ती : (क्रोध) मेरा नाम लेकर न पुकारो कालयवन।

कालयवन : अवश्य पुकारूँगा—मैं तुम्हारे निकट आ गया हूँ। हताश न करो अस्ती ! (अस्ती का हाथ पकड़ लेता है।)

अस्ती : कालयवन, हाथ छोड़ो।

कालयवन : नहीं छोड़ूँगा।

अस्ती : मथुरा की जीत ने तुम्हारी आँखों पर पट्टी डाल दी है।

कालयवन : मैं सरल सहज प्रेमी हूँ अस्ती।

अस्ती : तुम एक विधवा पर अत्याचार कर रहे हो कालयवन। हाथ छोड़ो—छोड़ो हाथ। (झटके से हाथ छुड़ाती है।)

कालयवन : (सक्रोध) अस्ती, कालयवन को पहचानने में भूल कर रही हो।

अस्ती : तुम ठीक हो। मैंने तुम्हें मनुष्य समझा था, तुम पशु हो।

कालयवन : (फिर अस्ती की ओर बढ़ता है)

अस्ती : एक सिंहनी को छेड़ने का दण्ड तुम्हें मिलना ही चाहिए। (कमर से कटार निकालकर कालयवन की छाती में घुसेड़ देती है "आह" के साथ वह गिरता है।)

अस्ती : कटार विष से बुझी है। तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। (कंस के चित्र से) मेरे स्वामी, मैं इस संसार में नहीं रह सकती। तुम्हारे पास आती हूँ। (कटार अपने सीने में मारती है। गिरती है।)

कालयवन : देवी ! देवी !! (मृत्यु)

अस्ती : पिताजी ! पिताजी !! (मृत्यु)

प्रहसन चरण द्वितीय दृश्य

स्थान—कुण्डनपुर के राजा भीष्मक की वाटिका।

समय—प्रभात।

(राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी गा रही है। सामने भगवती का मन्दिर है। प्रतिमा दीख रही है। प्रतिमा के निकट फूल, होम आदि।)

(भजन)

सब के दुख को हरने वाली माँ मेरी तू रख ले लाज
तुझे पुकारूँ रो-रो कर मैं विनती सुन ले आज।
सकल लोक-मद-लोभ नाशिनी, ज्ञान तेज उज्वल प्रसारिणी
दुख के भँवर में आज फँसी हूँ पार लगाओ नाव।
मुरलीधर की मधुर याद में सुभगे मैं तड़पूँ दिन-रात
लगी लगन मोहे उनसे मिलन की वर दे मातु बने सब काज ॥

(राजकुमार रुक्म का प्रवेश)

रुक्म : रुक्मिणी !

रुक्मिणी : कौन, भैया ?

रुक्म : तुम्हें पता है कि तुम्हारा विवाह होने वाला है ?

रुक्मिणी : मेरा विवाह, मैंने करने से अस्वीकार कर दिया है। यह विवाह मुझे पसन्द नहीं है।

रुक्म : आर्य कन्या का विवाह माँ-बाप की इच्छा के अनुसार होता है, अपने मन के अनुसार नहीं।

रुक्मिणी : यह तो आप कहते हैं, क्योंकि आप को अपनी बहन की हत्या करनी है। समाज में स्वयंवर की भी प्रथा है। मुझे अधिकार है कि मैं अपने मन से वर पसन्द करूँ।

रुक्म : लेकिन शिशुपाल में तुम्हें कौन-सा अवगुण दिखाई पड़ता है ? वह राजा है, वीर है, पराक्रमी है, स्वस्थ है, सुन्दर है। कौन कन्या उसे पसन्द नहीं करेगी ?

रुक्मिणी : संसार उसे पसन्द करे, पर रुक्मिणी उसे पसन्द नहीं करेगी।

रुक्म : कारण ?

रुक्मिणी : मेरी इच्छा।

रुक्म : तुम विवाह करना चाहती हो किससे ?

रुक्मिणी : क्या आप अभी तक नहीं जानते हैं ?

रुक्म : मैं एक बार उसका नाम अपनी बहन के मुख से सुनना चाहता हूँ।

रुक्मिणी : पिता जी को उनका नाम ज्ञात है।

रुक्म : लेकिन मैं भी जानने का अधिकार रखता हूँ।

रुक्मिणी : मेरा विवाह जब होगा द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण के साथ, अन्य किसी के साथ नहीं।

रुक्म : यह तुम्हारा निश्चय है रुक्मिणी ?

रुक्मिणी : मेरे प्राण के साथ यह निश्चय है भैया। श्यामसुन्दर ही मेरे स्वप्न के देवता, मेरे हृदयाकाश के सूर्य और मेरे शरीर के प्राण हैं।

रुक्म : (कड़े स्वर से) रुक्मिणी! तुम स्वप्नलोक में विचर रही हो, मूर्ख की तरह बातें कर रही हो। शिशुपाल के साथ ही तुम्हारा विवाह होगा। निमन्त्रण-पत्र भी भेजे जा चुके हैं। अब कुछ नहीं बदला जा सकता।

रुक्मिणी : पिताजी ने मुझे वचन दिया है कि शिशुपाल के साथ मेरा विवाह नहीं होगा।

रुक्म : पिताजी ने कुछ भी कहा हो, पर राजकुमार रुक्म का निश्चय कोई नहीं बदल सकता। शिशुपाल के साथ ही तुम्हारा विवाह होगा।

रुक्मिणी : तो फिर मैं आत्महत्या करूँगी।

रुक्म : अच्छा हुआ कि तुमने पहले ही कह दिया। मैं इसका प्रबन्ध करूँगा।

रुक्मिणी : भैया ! भैया !! यह विवाह मेरे जीवन-मरण का प्रश्न है। इसे शीघ्र मत निश्चित कीजिए।

रुक्म : रुक्मिणी, सुन लो, जान लो, कृष्ण महाराज जरासन्ध और शिशुपाल का शत्रु है, वह उन लोगों के भय से मथुरा से भाग गया है। मैं जरासन्ध और शिशुपाल का मित्र हूँ। इसलिए कृष्ण मेरा भी शत्रु हुआ। शत्रु के साथ मैं रुक्मिणी का विवाह नहीं कर सकता।

रुक्मिणी : घनश्याम मेरी साधना के फल हैं, मेरे हृदय-मन्दिर के देवता हैं, मेरे ईश्वर हैं। मेरे प्राण उनके साथ हैं।

रुक्म : रुक्मिणी, समय है। मान जाओ। भूल जाओ प्रपंची कृष्ण को।

रुक्मिणी : (कान बन्द करती हुई) मेरे कान श्रीकृष्ण की निन्दा सुनना नहीं चाहते। यहाँ तो मुरली की 'धुन' सुनाई पड़ रही है। वह मधुर श्यामल वेश ! हँसता हुआ मुखमण्डल ! ना, मैं उन्हें कभी नहीं विस्मृत कर सकती। वही मेरे ईश्वर हैं। वही मेरे ईश्वर हैं।

रुक्म : तुम उन्मादिनी हो मैं कड़े पहरे का प्रबन्ध करता हूँ।

(प्रस्थान)

रुक्मिणी : मेरे चितचोर ! श्यामसुन्दर ! मेरा शीघ्र उद्धार करो। तुमने वृन्दावन के लोगों की पुकार सुनी। तुमने मथुरा के निवासियों की पुकार सुनी। तुम दीन बन्धु हो, दयासागर हो, प्रेम-पिपासिन इस नारी की भी प्रार्थना सुनो।

नेपथ्य से : (चौंककर) माँ बुला रही है। चलूँ, कदाचित वहाँ कुछ सहायता मिले। (प्रस्थान)

[दूसरी ओर से बातें करते हुए राजकुमार रुक्म, सम्राट् जरासन्ध और महाराज शिशुपाल का प्रवेश]

जरासन्ध : राजकुमार रुक्म, मुझे इस बात से बहुत प्रसन्नता हुई कि तुमने रुक्मिणी का विवाह वीर शिशुपाल से रचाया है।

रुक्म : चन्देरी-नरेश शिशुपाल हमारे पुराने मित्र हैं। विवाह के पश्चात् वह मित्रता स्थायी हो जायगी।

शिशुपाल : मैं आपका कृतज्ञ हूँ राजकुमार। आपके पिता महाराज भीष्मक का इस सूझ पर मुझे आनन्द होता है। विवाह के निमन्त्रण सभी जगह भेजे जा चुके ?

रुक्म : हाँ सब ठीक है। लेकिन रुक्मिणी ने एक बाधा डाल दी है।

शिशुपाल : वह क्या ?

रुक्म : उसने घर भर में विद्रोह कर दिया है। वह कृष्ण से विवाह करना चाहती है।

जरासन्ध : कृष्ण से ?

शिशुपाल : कृष्ण से ?

रुक्म : जी हाँ।

शिशुपाल : यह मेरा अपमान है राजकुमार।

जरासन्ध : शिशुपाल का अपमान मगध-सम्राट् का अपमान है। क्या कृष्ण भी निमंत्रित किया गया है ?

रुक्म : पिताजी उसे निमन्त्रित करना चाहते थे। लेकिन मैंने ऐसा करने नहीं दिया।

जरासन्ध : तुमने ठीक किया है रुक्म !

शिशुपाल : (कठोर स्वर में) राजकुमार रुक्म, यह भी कह देना उचित होगा कि रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ ही होना चाहिए—चाहे जैसे भी हो। कुण्डनपुर के सिंहासन का कल्याण इसी में है कि वह हम लोगों से मिलकर रहे।

रुक्म : (वैसे ही स्वर में चन्देरी नरेश, कुण्डनपुर के राजकुमार को धमकी तो नहीं दे रहे हैं ? यदि ऐसी बात है तो मेरी तलवार भी किसी से कम नहीं है।

जरासन्ध : (शान्त स्वर में) रुक्म ! क्रोध न करो। हम मित्रता का बन्धन कड़ा करने आये हैं; ढीला करने नहीं ! शिशुपाल तुम्हारा मित्र है, शत्रु नहीं।

रुक्म : सम्राट्, सारा कुण्डनपुर मेरे विरुद्ध हो रहा है। फिर भी मैं शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह तय कर चुका हूँ

शिशुपाल : अपने कड़े शब्दों के लिए मैं लज्जित हूँ राजकुमार।

रुक्म : आप लोग दूर से आ रहे हैं। जाइए आराम कीजिए। मैं अभी आया।

(जरासन्ध और शिशुपाल का प्रस्थान)

रुक्म : यह विवाह निर्विघ्न समाप्त नहीं होगा। युद्ध अवश्य होगा। पिताजी, रुक्मिणी—ये सब कृष्ण के पक्ष में से हैं। रुक्मिणी के चारों ओर कड़े पहरे का रहना आवश्यक है। उसे किसी से मिलना नहीं होगा। शिशुपाल के साथ ही रुक्मिणी का विवाह होगा। जो बाधा डालेगा, उसे मरना पड़ेगा। मरना पड़ेगा।

(प्रस्थान)

(स्थान—नीरव शांति। लता-कुञ्ज को चीरते हुए श्रीकृष्ण और बलराम प्रकट होते हैं। दोनों सतर्क हैं और इधर-उधर देख रहे हैं।)

कृष्ण : दाऊ जी, यही वह मन्दिर है जहाँ रुक्मिणी पूजा करने के लिए आनेवाली है।

बलराम : यहाँ तक तो हमलोग पहुँच गये। किसी ने अबतक नहीं देखा है। हमारे सैनिकगण कहाँ हैं ?

कृष्ण : सब इधर-उधर छिपे हैं। संकेत पाते ही वे शत्रु गण पर टूट पड़ेंगे।

बलराम : कृष्ण, एक अबला ने सहायता की भीख माँगी है।

तुम्हारा धर्म कहता है कि उसकी मदद करो, उद्धार करो। रुक्मिणी का पत्र तुमने पढ़ा था श्याम सुन्दर ?

कृष्ण : पढ़ा था। उस पत्र का एक-एक शब्द उस नारी के आँसू से तर था। पर दाऊजी, (जरासन्ध और शिशुपाल भी कुण्डनपुर में अपनी सेना के साथ हैं)। रुक्म भी कड़े पहरे का प्रबन्ध कर रहा है।

बलराम : इसमें सोचना क्या है ? रुक्मिणी का हरण करके तुम आगे बढ़ जाना। मैं जरासन्ध, शिशुपाल और रुक्म की राह ले अपने सैनिक के साथ रहूँगा। रुक्मिणी के जाने के बाद वे लोग मेरा क्या बिगाड़ सकेंगे।

कृष्ण : देखिये उस ओर। कदाचित् राजकुमारी आ रही है।

बलराम : यही रुक्मिणी—मेरे कृष्ण की पटरानी—द्वारिका की राजमहषी। देखो उसके दोनों तरफ सशस्त्र सैनिक हैं। वह यहीं आ रही है— देवी की पूजा करने के लिए। सावधान हो जाओ।

कृष्ण : सावधान हूँ दाऊजी। मैं मूर्त्ति के पीछे जाता हूँ। यहीं से रुक्मिणी का हरण करूँगा। आप हट जाइये। सेना सम्हालें। मेरे पाँचजन्य की ध्वनि से आप समझ जायेंगे कि काम हो गया।

बलराम : तुम शीघ्र छिप जाओ। मैं जाता हूँ। अब द्वारिका में ही भेंट होगी। समय बर्बाद न करके शीघ्र द्वारिका की ओर रथ बढ़ाना।

(कृष्ण प्रणाम करते हैं। बलराम आशीष देते हैं। बलराम का प्रस्थान।)

कृष्ण : लोग निकट आ गये। मुझे छिप जाना चाहिये। वहीं

रुक्मिणी है विधाता ने अपनी समस्त कला का प्रदर्शन रुक्मिणी में ही किया है।

(भगवती की मूर्त्ति के पीछे छिप जाते हैं। नेपथ्य में पद ध्वनि।)

रुक्मिणी : (नेपथ्य में) सैनिकों तुमलोग यहीं पर ठहरो। मैं पूजा करके आती हूँ।

(रुक्मिणी का प्रवेश हाथ में पूजा-पात्र पुष्पादि। मूर्त्ति के सामने पूजा करती है।)

रुक्मिणी : माँ! जगदम्बे! भगवती तुम सब कुछ जानती हो। मैं घोर कष्ट में हूँ !मेरे श्यामसुन्दर को भेज दो माँ!

(सिर टेक देती है। कृष्ण दर्शन देते है।)

कृष्ण : तुम्हारा श्यामसुन्दर उपस्थित है देवी।

रुक्मिणी : (देखकर) कौन? मेरे प्रभु? मेरे आराध्यदेव।

(चरण पकड़ लेती है)

कृष्ण : तुम्हारे प्रेम की साधना ने मुझे द्वारिका में भी अशान्त कर दिया, मेरे सिंहासन को हिला दिया, मुझे बाध्य किया कि मैं शत्रुओं की सेना को चीरते हुए आऊँ और तुम्हारा हरण करूँ। आओ रुक्मिणी।

(हाथ पकड़ लेते हैं)

रुक्मिणी : भगवती ने मेरी पुकार सुन ली। आज मेरी तपस्या का फल मुझे मिल गया। प्रभो, आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

कृष्ण : रुक्मिणी शत्रु मन्दिर के द्वार पर खड़े हैं। मेरे साथ आओ। युद्ध करते हुए द्वारिका की ओर बढ़ना पड़ेगा।

(नेपथ्य में)

रुक्म : रुक्मिणी ने बहुत विलम्ब किया। भीतर चलो !

रुक्मिणी : (श्रीकृष्ण को पकड़कर भीतर वाणी में) भैया आ गये।

कृष्ण : (हँसकर) क्यों, आशीर्वाद देने के लिए क्या ?

रुक्मिणी : मुझे भय लगता है। वह भयानक स्वभाव के हैं।

कृष्ण : रुक्मिणी तुम्हारे साथ कृष्ण है। तुम कृष्ण की रानी होकर भी डरती हो ? जाओ भेंट कर लो भैया से !

(रुक्मिणी का हाथ पकड़े प्रस्थान; नेपथ्य में शंखध्वनि; दूसरी ओर से नंगी तलवार लिए हुए सैनिकों के साथ रुक्म और शिशुपाल का प्रवेश।)

रुक्म : कैसी है यह शंखध्वनि ?

शिशुपाल : यह अवश्य यहाँ से चली गई है। यह शत्रु की शंखध्वनि है राजकुमार।

रुक्म : सैनिकों ! तुम लोग विश्वासघातक हो।

शिशुपाल : राजकुमार, विश्वासघातक हैं आप। आपने जान-बूझकर रुक्मिणी का हरण कराया है।

रुक्म : चन्देरी-नरेश आप भूलते हैं मैंने आपके लिए ही घर भर से झगड़ा मोल लिया है।

शिशुपाल : फिर भी आपने मेरा अपमान किया है राजकुमार।

रुक्म : ओह मेरा किया कराया व्यर्थ गया !

शिशुपाल : रुक्मिणी का हरण करने वाला चोर कृष्ण के सिवा और कोई नहीं हो सकता।

रुक्म : लेकिन कृष्ण यहाँ तक आया कैसे ?

शिशुपाल : आपने चुपके से कृष्ण को बुलाया था राजकुमार।

~~रुक्मिणी~~ रुक्म : (तेज स्वर में) चन्देरी-नरेश !

शिशुपाल : मैं ठीक कहता हूँ। मैं कुण्डनपुर में रक्त की धारा बहा दूँगा। प्रलय की सृष्टि करूँगा।

~~रुक्मिणी~~ रुक्म : चन्देरी-नरेश, मैं व्यग्र हो रहा हूँ। मैं रुक्मिणी की खोज में अभी जाता हूँ। अब रुक्मिणी के साथ ही कुण्डनपुर में प्रवेश करूँगा, अन्यथा नहीं। यही मेरी प्रतिज्ञा है।

(प्रस्थान)

शिशुपाल : इस षड्यंत्र में कृष्ण का अवश्य हाथ है। इसका बदला लेना ही पड़ेगा—अवश्य लेना पड़ेगा।

(प्रस्थान)

चतुर्थ दृश्य

स्थान—वन-पथ।

(कृष्ण और रुक्म असि-युद्ध करने में तल्लीन है। पास ही रथ खड़ा है। उसपर व्यग्र और उदास रुक्मिणी बैठी है। एकाएक रुक्म की तलवार टूट जाती है। शीघ्रता से कृष्ण अपनी तलवार की नोक उसकी छाती से सटा देते हैं। रुक्मिणी 'आह' के साथ अपनी आँखें बन्द कर लेती है। रुक्म के शरीर पर रक्त के दाग हैं।)

कृष्ण : (तलवार की नोक रुक्म की छाती से सटाए हुए) तुम्हारी मृत्यु निश्चित है राजकुमार। इधर-उधर न करो अन्यथा मेरी तलवार तुम्हारी छाती के पार हो जायगी।

रुक्मिणी : (रथ से उतर कर और कृष्ण के पैर पकड़कर) महाराज, भैया को क्षमा करो।

कृष्ण : नहीं रुक्मिणी, यह भाई नहीं शत्रु है; इसे मरना ही चाहिए।

रुक्मिणी : मेरे लिए नहीं, भाभी सुलेखा के सुहाग के लिए उन्हें क्षमा कीजिये। मेरी भाभी का जीवन नष्ट न कीजिए प्रभो!

रुक्म : क्षमा। द्वारिकाधीश क्षमा।

कृष्ण : (तलवार हटाकर) सुलेखा के सुहाग के लिए तुम्हारा जीवित रहना आवश्यक है। मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। लौट जाओ कुण्डनपुर की ओर।

रुक्म : नहीं, मैं कुण्डनपुर में प्रवेश नहीं करूँगा। ऐसी ही मेरी प्रतिज्ञा है। मैं "भोजकट" नगर बसा कर यहीं रहूँगा। महाराज, मैंने आपको नहीं पहचाना था, मुझे क्षमा कीजिए।

कृष्ण : आओ रुक्म। (आलिंगन)

(पटाक्षेप)

———

तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

स्थान—इन्द्रप्रस्थ में पाण्डवों का प्रासाद
(युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन बातें कर रहे हैं।)

अर्जुन : दादा, मय दानव ने प्रासाद के बनाने में अद्भुत कला दिखलायी है। जल के स्थान पर थल और थल के स्थान पर जल—वाह! क्या कारीगरी है।

भीम : हाँ, और दीवार के स्थान पर द्वार और द्वार के स्थान पर दीवार। यहाँ की सारी बातें आश्चर्य की हैं। तभी तो हस्तिनापुर-नरेश दुर्योधन हमलोगों से इतना जलता है।

युधि० : जब दुर्योधन राज्य का दो भाग करने लगा तो उसने जान बूझकर खाण्डव वन का विकट भाग मेरी ओर कर दिया। किन्तु श्रीकृष्ण और अर्जुन ने अपने विक्रम से सारा वन जलाकर राख कर दिया और मय दानव की रक्षा करके इन्द्रप्रस्थ का यह विमान और विचित्र महल बनवाया।

अर्जुन : दादा, मैंने भला किया? श्रीकृष्ण की प्रेरणा से ही यह सब हुआ है।

युधि० : इन्द्र के सिंहासन के सामने लगभग सारा आर्यावर्त्त नतमस्तक है, शत्रु गण पाण्डवों के नाम से काँपते हैं, प्रजा धन धान्य से पूर्ण है, फिर भी मेरी इच्छा अपूर्ण है।

भीम : इन्द्रप्रस्थ के महाराज की किसी भी आज्ञा का पालन करने के लिए भीम तैयार है। कहिए, कौन-सी इच्छा है आपकी ?

अर्जुन : हाँ दादा, अर्जुन भी तैयार है। जबतक मेरे हाथ में गाण्डीव धनुष है, तरकश में तीर है, कमर में तलवार है, शरीर में रक्त है, रक्त में गर्मी है, तब तक आपकी कोई भी आज्ञा टल नहीं सकती। आज्ञा दीजिए।

युधि० : मैं राजसूय-यज्ञ करना चाहता हूँ।

भीम : राजसूय-यज्ञ ? आपका अर्थ है कि दिग्विजय की आयोजना करनी पड़ेगी।

अर्जुन : भू-मण्डल के सभी नरेशों से लोहा लेना पड़ेगा।

युधि० : क्या मेरे चार भाई चारों दिशा को जीत नहीं सकेंगे ?

अर्जुन : अवश्य जीत सकेंगे दादा !

युधि० : मैंने कृष्ण के पास भी दूत भेजा है। वे भी आने वाले हैं।

नेपथ्य में : द्वारिकाधीश की जय !

अर्जुन : दादा, मधुसूदन आ गए।

(श्रीकृष्ण का प्रवेश। सब प्रणाम करते हैं।)

कृष्ण : धर्मराज ने एकाएक मेरी याद की है। कुशल तो है?

युधि० : सब कुशल है। मुझे आपसे कुछ परामर्श करना है?

कृष्ण : कहिए।

युधि० : मैं राजसूय-यज्ञ करना चाहता हूँ।

कृष्ण : विचार सुन्दर है। इन्द्रप्रस्थ के महाराज के योग्य ही यह काम है। कहिए, मेरे लिए कौन-सी सेवा रहेगी?

युधि० : (कुछ हँसकर) लज्जित कीजिए न घनश्याम। मुझे चाहिए आपकी अनुमति।

कृष्ण : तब मुझे सोचना पड़ेगा धर्मराज।

युधि० : श्रीकृष्ण सोचना पड़ेगा? क्या हम कहीं हार जायेंगे? बताइए तो कौन ऐसा वीर है जो पाण्डवों से मोर्चा ले सके?

कृष्ण : (हँसकर) भीमसेन, तुम्हारा शरीर मोटा है और साथ ही बुद्धि भी कुछ मोटी है। क्यों?

भीम : कैसे यदुवीर? मैं बुद्धि की बातें नहीं कर सकता, यह जानता हूँ। पर मेरे बोलने का अर्थ यह है कि जिसके सहायक महान कृष्ण हों, वह भला कहीं हार सकता है?

युधि० : भीम ठीक कहता है घनश्याम।

युधि० : राजसूय-यज्ञ प्रारम्भ करने के पहले एक भी नरेश ऐसा न बचे जो अपने को तुम्हारे ऊपर कह सके।

अर्जुन : तो फिर ऐसा है कौन जो हमारा प्रतिरोध करे।

कृष्ण : जरासन्ध और शिशुपाल।

भीम : जरासन्ध ?

अर्जुन : शिशुपाल ?

कृष्ण : एक नहीं, दोनों।

युधि० : क्या दोनों अजेय हैं ?

कृष्ण : नहीं, पर इन्हें हराना सामान्य काम नहीं है।

युधि० : योगेश्वर, शिशुपाल को मैं ठीक कर लूँगा। वह मेरा सम्बन्धी है। शिशुपाल बाधा नहीं डालेगा। आप जरासन्ध के लिए कुछ उपाय निकालें।

कृष्ण : जरासन्ध मुझसे सत्रह बार हार चुका है। लेकिन अठारहवीं बार मैंने युद्धक्षेत्र छोड़ दिया। इसी से वह मुझे परास्त समझता है। वह मेरे ललकारने पर भी मुझसे नहीं लड़ेगा—यही अड़चन है। जरासन्ध मगध-सम्राट् है। आठ सौ नरेश उसके बन्दीगृह में पड़े हैं। वैसे वीर को छेड़ने से पहले सोच लेना होगा।

भीम : युद्ध में उसे जीतना आसान नहीं है। गिरीव्रज में उसकी राजधानी एक विकट स्थान में है। मस्तक ऊँचा किये पर्वतमालायें सब ओर से उसकी राजधानी की रक्षा कर रही हैं। घोर वन-प्रदेश दूसरी श्रेणी का रक्षक है। मुख्य द्वार से भी विदेशियों के लिए जाना आसान नहीं है।

अर्जुन : आप तो अपने शब्दों से हमलोगों का उत्साह ठंडा कर रहे हैं भगवन्।

कृष्ण : मैं ठीक कह रहा हूँ अर्जुन।

युधि० : तो राजसूय यज्ञ स्थगित कर दिया जाय ?

कृष्ण : यह भी नहीं हो सकता।

युधि० : क्यों ?

कृष्ण : राजसूय यज्ञ अवश्य होगा।

युधि० : कैसे घनश्याम ?

कृष्ण : भीम से ही सारा काम हो सकेगा।

भीम : मुझसे ? मेरी बुद्धि तो मोटी है घनश्याम।

कृष्ण : (हँसते हुए) यह ठीक है। मोटी बुद्धिवाले भी कहीं-कहीं काम आ जाते हैं।

भीम : तो फिर मैं तैयार हूँ।

कृष्ण : भीम और अर्जुन को मेरे साथ चलना पड़ेगा। शेष बात मैं इन्हें समझा दूँगा।

युधि० : जाओ भीम। अर्जुन, तुम भी जाओ।

कृष्ण : मैंने सोचकर देखा है कि जरासन्ध के स्वेच्छाचार से भारत-भूमि ऊब गई है। आठ सौ नरेश उसके बन्दी-गृह में अपने अन्तिम क्षण की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं जनसेवक हूँ। मुझे शस्यश्यामला भारत भूमि के ऊपर शान्ति की स्थापना करनी है। जाइए धर्मराज, नकुल और सहदेव को शुभ मुहूर्त्त में विजय के लिए भारत के शेष कोने में भेजिए। आपकी जय निश्चित है।

(प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

स्थान—राजगृह में जरासन्ध की मल्ल भूमि।

(सम्राट् जरासन्ध मल्ल-युद्ध के लिए खड़े हैं। सामने श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीम हैं। भीम भी तैयार हैं।)

जरासंध: मैं फिर पूछता हूँ तुमसे कृष्ण, तुम्हें लज्जा नहीं आती ? तुम पराजित होकर मुझसे फिर युद्ध करने का दम्भ रखते हो ? भूल गये कालयवन को—जिसने मेरी आज्ञा से मथुरा में हाहाकार मचा दिया, जिसने तुमको और बलराम को गिरि-गोमन्त तक खदेड़ा था ? इन दो वीरों को बहका कर तुम व्यर्थ ही लाये हो मेरे सोये हुए क्रोध को भड़काया है। बेचारा अर्जुन तो मेरी भुजाओं में भी पूरी तरह नहीं आ सकता ! भीम अवश्य वीर है। इससे मैं तेरह दिनों से लड़ रहा हूँ। इससे लड़ने में भी आनन्द आता है।

कृष्ण : सम्राट् जरासन्ध, बिना बोले रहा नहीं जाता। आप व्यर्थ में गर्व कर रहे हैं। सत्रह बार हारने पर भी आपने निर्लज्ज की भाँति असभ्य कालयवन की सहायता से मथुरा पर चढ़ाई की। मैं युद्ध में हारा नहीं। मैंने व्यर्थ की नरहत्या को रोकने के लिए सिन्धु के बीच द्वारिकापुरी की नींव डाली।

जरासन्ध : चोर की तरह राजगृह में प्रवेश करना, स्नातक बन कर मेरे प्रहरियों को धोखा देना, मुख्य द्वार से न घुसकर पिछले द्वार से घुसना—क्या यह तुम्हें शोभा देता है कृष्ण ?

कृष्ण : सम्राट् आप मेरे शत्रु हैं। शत्रु के घर में पिछले द्वार से ही प्रवेश किया जा सकता है। यह सत्य है कि स्नातक का वेष बना कर मैंने आपके प्रहरियों को धोखा दिया लेकिन क्या सम्राट् जरासन्ध के लिए इसका समझना इतना कठिन है कि इसमें जय किसकी रही—कृष्ण की युक्ति का या सम्राट् जरासन्ध की शासन-व्यवस्था की ?

जरासन्ध : कृष्ण तो प्रपंची है। बचपन में माखन की चोरी की। फिर पराई नारी की, और आज मगध का राजमुकुट चोरी करने के लिए आया है।

कृष्ण : महाराज, यह सत्य है कि मैं माखन चोर हूँ। पर पराई स्त्री की मैंने चोरी नहीं की; मैंने धर्म के अनुसार रुक्मिणी का तब हरण किया जब वह अविवाहित थी। मगधमुकुट का भी चोर नहीं हूँ। एक बार मुट्ठी में पाकर भी मथुरा का राजमुकुट छोड़ दिया था मैं राजगृह को देखते ही इस पर मोहित हो गया हूँ अवश्य। भयानक सैनिक की तरह पर्वत पक्तियाँ, अन्धेरी गिरी-कन्दराएँ, हरे-भरे बन, कलकल निनाद करतीं वनगंगा, गर्म झरने—यही तो राजगृह का वैभव है सम्राट्! आपके स्वर्ण-भंडार की, आपके राजमुकुट की, इस वैभव के सामने कोई गिनती नहीं।—इतना होने पर भी मैं मगध की इस अतुल धनराशि को न लूटने आया हूँ, और न नष्ट करने। मैं तो यह कहने आया हूँ कि आप उन आठ सौ नरेशों के जीवन नष्ट न करें। उन्हें छोड़ दें और धर्मराज के राजसूय यज्ञ में सहायता प्रदान करें।

जरासन्ध : धर्मराज का राजसूय; हाः हाः हा. ! तुम मेरी साधना को नहीं जानते ! मैं भी एक बड़ा विकट यज्ञ करना चाहता हूँ। स्वर्ग के देवताओं की सेवा में इन आठ सौ नरेशों के सिर भेंट करूँगा — नरबलि दूँगा। वह विचित्र यज्ञ होगा जिसमें पशु की जगह मनुष्यों की बलि दी जायगी।

कृष्ण : यह क्रूर विचार सम्राट् ! शक्ति के मद में अन्धे न हो जाइए, नरबलि के निश्चय का परित्याग कीजिए। राजगृह पवित्र स्थान है। यहाँ प्रकृति का विवाह हो रहा है। मुनियों का वेदगान हो रहा है। मानव बलि से इसे अपवित्र न कीजिए।

जरासन्ध : जरासन्ध को कोई नहीं बदल सकता कृष्ण।

कृष्ण : आप दासी-वृत्त को छोड़िए—नरमेध का भयंकर निश्चय आप को छोड़ना ही पड़ेगा।

जरासन्ध : मुझे उपदेश न दो कृष्ण। भीम, युद्ध करो।

कृष्ण : सम्राट्. महाराज कंस की मृत्यु से कुछ सीखें।

जरासन्ध : मैं कंस नहीं, जरासन्ध हूँ।

कृष्ण : आप का आशीर्वाद चाहिए। (आशीर्वाद ग्रहण करते हैं।)

जरासन्ध : कृष्ण को आशीर्वाद (अट्टहास)।

भीम : आइए सम्राट्, कीजिए युद्ध।

जरासन्ध : भीम, हम दोनों ने तरह दिनों तक, राजगृह की इस मल्लभूमि में प्रभात से सन्ध्याकाल तक मल्लयुद्ध

किया। पर फल कुछ नहीं निकला। मल्लयुद्ध में इतना अधिक मेरे सामने और कोई नहीं ठहर सका था। मानना पड़ता है कि तुम योद्धा हो फिर भी जान लो पाण्डव वीर, इस मल्लभूमि में मेरे सिवा और कोई, कभी भी, विजयी नहीं हुआ। यह साधारण मल्लभूमि नहीं है। (हाथ में मिट्टी लेकर) देखो, मिट्टी कैसी उजली और चिकनी है। यह दूध से सींची जाती है।

भीम : मेरा अहोभाग्य है कि दूध से सींची आप की मल्लभूमि में उतरने का मुझे अवसर मिला। आज इसे मैं सम्राट् जरासन्ध के रक्त से सींचूँगा।

जरासन्ध : भीमसेन! तुम्हारा अहंकार मैं तोड़ डालूँगा।

भीम : अच्छी बात है। आइए।

जरासन्ध : भगवान सूर्य भी मल्लयुद्ध देखने के लिए आ गये। आओ भीम, आज युद्ध का चौदहवाँ दिन है। आज दोनों में से एक का अन्त हो जाना चाहिए।

भीम : अवश्य।
(दोनों खूब मल्लयुद्ध करते हैं। भीम पछाड़ कर जरासन्ध की छाती पर जा बैठते हैं।)

भीम : किसकी जय रही सम्राट्?

जरासन्ध : तुम्हारी जय रही भीमसेन! मैं बहुत चोट खा चुका हूँ। नहीं बचूँगा। आह! कृष्ण! तुम सचमुच प्रपंची हो। तुमने अपनी युक्ति से मेरा बध कराया है। मेरी राक्षसी अभिलाषा! नरबलि का आयोजन कृष्ण! क्षमा!

मृत्यु)

कृष्ण : भीम तुमने जरासन्ध पर महान जय पायी है। मैं तुम्हें साधुवाद देता हूँ वीर।

भीम : इस जय में आपका ही हाथ है घनश्याम।

अर्जुन : अब धर्मराज के राजसूय यज्ञ का सबसे बड़ा कंटक दूर हुआ।

कृष्ण : भीम, जरासन्ध के पुत्र सहदेव को सम्मान के साथ ले आओ। मगध-सम्राट् का मुकुट मैं, अपने हाथ से, उसे पहनाऊँगा। अर्जुन, तुम आठ सौ बन्दी राजाओं के कारागार का द्वार खोल दो। उनका भय दूर हो गया। जाओ, शीघ्र जाओ! हमें इन्द्रप्रस्थ की ओर लौटना है।

(सबका प्रस्थान)

तृतीय दृश्य

स्थान : इन्द्रप्रस्थ की राजसभा

(एक उच्च स्थान पर श्रीकृष्ण आसीन हैं। हाथ में चक्र भी है। सामने पाण्डव, कौरव, भीष्म, शिशुपाल आदि अनेक राजागण हैं। अर्जुन के हाथ में आरती उतारने और तिलक देने के सामान हैं। सबसे पहले किसे तिलक दिया जाय, इसी पर विवाद हो रहा है। शिशुपाल बहुत क्रुद्ध है।

शिशुपाल : यह घोर अनर्थ हो रहा है। पितामह भीष्म की बुद्धि मारी गई है। धर्मराज युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ कोई साधारण यज्ञ नहीं! मैं पूछता हूँ कि भूमण्डल के अनेक वीर और विद्वान् सज्जनों के बीच श्रीकृष्ण

ही में ऐसा कौन-सा गुण मिला कि सर्वोच्च आसन दिया गया ? क्या कारण है अर्जुन उसकी आरती उतारने और सर्वप्रथम तिलक देने के लिए तैयार हैं ?

युधिष्ठिर : चन्देरी-नरेश शिशुपाल ! आप मेरे अपने सम्बन्धी हैं। मैं आशा करता हूँ कि इस शुभ कार्य में आप विघ्न नहीं डालेंगे।

शिशुपाल : अवश्य विघ्न डालूँगा ! धर्मराज भूलता नहीं हूँ कि मैं आपका सम्बन्धी हूँ। इसी से विना प्रतिवाद किये विना युद्ध किये, आपकी सत्ता मैंने मान ली और इस यज्ञ में भी उपस्थित हुआ। नहीं जानता था कि इस शुभ कार्य के पीछे एक कलंकित हाथ काम कर रहा है। जानने पर मैं अवश्य प्रतिवाद करता, अवश्य युद्ध करता और इस यज्ञ में कदापि नहीं आता।

अर्जुन : चन्देरी-नरेश आप सभ्यता की सीमा से आगे बढ़ रहे हैं।

शिशुपाल : अर्जुन, सभ्यता की शिक्षा मुझे तुमसे नहीं लेनी है। मैं इतना हतवीर्य नहीं हूँ कि कृष्ण की पूजा करूँ।

भीम : (सरोष) चन्देरी-नरेश, अपने शब्दों पर लगाम दीजिए।

शिशुपाल : तुमलोगों की लाल-लाल आँखें शिशुपाल के विचारों को नहीं बदल सकतीं।

युधिष्ठिर : चन्देरी-नरेश तुम चाहते क्या हो ?

शिशुपाल : यह समझना क्या कठिन है धर्मराज ? कृष्ण की पूजा न हो, उसे वह आसन नहीं दिया जाय; उसे प्रथम तिलक नही दिया जाय।

युधिष्ठिर : तो फिर कौन योग्य है, आप ही बतायें।

शिशुपाल : आँख खोलकर देखिए धर्मराज—आपकी इस सभा में भीष्म जैसे बाल-ब्रह्मचारी, द्रोण जैसे आचार्य, और दुर्योधन जैसे राजा उपस्थित हैं। एक से एक मुनि हैं ये ही क्यों, कृष्ण के वृद्ध पिता वसुदेव जी भी हैं। क्या इन सब महापुरुषों से कृष्ण ही बढ़ा-चढ़ा है।

अर्जुन : आप निष्पक्ष होकर देखें चन्देरी-नरेश। श्रीकृष्ण में ये सभी गुण हैं। उन्हें आप सामान्य पुरुष न जानें।

शिशुपाल : कृष्ण तुम्हारा मित्र है। इससे तुम इसकी प्रशंसा करते हो। अर्जुन तुम नहीं जानते कि दुनिया के सभी अवगुण कृष्ण में हैं। उसका चेहरा श्याम है और हृदय भी श्याम है। न चेहरा सुन्दर है, और न हृदय।

अर्जुन : आप श्रीकृष्ण की निन्दा करके बुरा कर रहे हैं चन्देरी-नरेश। परिणाम भयंकर होगा। मैं श्रीकृष्ण की निन्दा नहीं सुन सकता।

कृष्ण : (मुस्कुराकर) अर्जुन बुरा न मानो। चन्देरी-नरेश के क्रोध को बीच ही में दमन न करो। उनके हृदयों की गर्मी निकलने दो। फिर वह स्वयं शान्त हो जायेंगे। हाँ, तो चन्देरी-नरेश, आगे कहिए। आपने ठीक ही कहा है कि मेरा चेहरा श्याम है, और हृदय भी। आगे कहिए।

शिशुपाल : तुम निर्लज्ज हो कृष्ण।

कृष्ण : जी हाँ, औरतों की लज्जा तो आपके पास है, तभी तो सत्रह बार मथुरा से हारकर भागे थे। क्यों ?

अर्जुन : चन्देरी-नरेश, मैं फिर कहता हूँ कि आप बाधा न डालें।

शिशुपाल : एक बार नहीं, सौ वार बाधा डालूँगा। सहस्त्र बार कृष्ण का अपमान करूँगा। कृष्ण कायर है। नीच है, पतित है प्रपंची है, चरित्रहीन है।

अर्जुन : (श्रीकृष्ण से) योगेश्वर, आज्ञा दीजिए......।

कृष्ण : (मुस्कुराकर) अधीर न होओ अर्जुन, धैर्य रखो।

शिशुपाल : कंस को धोखे से किसने मारा था? कालयकवन से पराजित होकर रणक्षेत्र छोड़कर द्वारिका की ओर कौन भागा था? गोपियों के साथ चरित्रहीन होकर मुरली कौन बजाया करता था? कदम्ब के नीचे यमुना के तीर पर अर्द्धनिशा में कौन नाचा करता था? कुण्डनपुर की राज्यकन्या रुक्मिणी को अन्याय-पूर्वक किसने भगाया था? राजगृह में स्नातक के छद्-मवेश में धोखा देकर, कौन घुसा था? सम्राट् जरा-सन्ध का छलपूर्वक बध किसने कराया था? सभी प्रश्नों का उत्तर है—कृष्ण-कृष्ण। आज उसी नीच कृष्ण की पूजा? ओह! यह असह्य है।

कृष्ण : चन्देरी-नरेश, आप भूलते हैं। आपने सभी घटनाओं को रंगकर रखा है। कंस का दमन मैंने लड़कर किया था। मथुरा को व्यर्थ की नर-हत्या से बचाने के लिए में लड़ते हुए द्वारिका की ओर चला गया था, कायल-वन ने मुझे परास्त नहीं किया था। मैं आज भी मुरली बजाता हूँ, पर पाप-कामना से नहीं। यह तो कला की उपासना है। जिन्हें कला से प्रेम है, वे आज भी साथ रहते। कुण्डनपुर की राजकन्या अविवाहित थी —मैंने हरण करके उससे विवाह किया था। यह विवाह प्रचलित है। मैं जन राह में पिछले द्वार से घुसा

था। क्योंकि वह शत्रु का वर था। रही जरासन्ध वश की बात। जरासन्ध अहंकारी थे। वे आठ सौ नरेशों की बलि देना चाहते थे। उनका अन्त आवश्यक था। फिर भी लड़ते हुए मारे गये हैं। मैं समझता हूँ कि आपकी बुद्धि में कुछ उल्टी गड़बड़ी आ गयी है। इसी से आपने सब उल्टा ही समझा है।

शिशुपाल : इतने लोग के बीच प्रथम तिलक तुम्हें नहीं मिलना चाहिए

भीम : क्यों नहीं मिलना चाहिए? आप श्रीकृष्ण को नहीं जानते। इन्होंने मथुरा निवासियों को कंस के अत्याचार से बचाया, गोकुल-निवासियों को देवराज इन्द्र के कोप से बचाया, सत्रह बार विजयी जरासन्ध और आप को हराया। कुण्डनपुर में आपलोगों के सामने रुक्मिणी का हरण किया, राजगृह में जरासन्ध की नीचता का अन्त किया। इतना ही नहीं, इसी राजसूय यज्ञ में जो काम आपलोग नहीं कर सके, उसे श्रीकृष्ण ने किया। श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं, घनश्याम हैं, राजा हैं, भक्तवत्सल हैं, और पुरुषोत्तम हैं।

शिशुपाल : पुरुषोत्तम? भीमसेन, कृष्ण को ईश्वर क्यों नहीं कहते?

भीम : वैसे सर्वगुण सम्पन्न पुरुष को यदि ईश्वर कहा जाय तो अनुचित नहीं होगा।

शिशुपाल : बहुत सुन चुका। बहुत हो चुका। मैं फिर कहता हूँ कि कृष्ण को यह उच्चासन छोड़ना ही पड़ेगा अन्यथा इस पवित्र यज्ञभूमि पर रक्तधारा बहेगी।

कृष्ण : (सक्रोध) शिशुपाल ।

शिशुपाल : आश्चर्य ! कृष्ण का क्रोध आज देख रहा हूँ मेरी बातें बहुत तीखी हैं । क्यों नटवर घनश्याम ?

कृष्ण : शिशुपाल, फिर कहता हूँ, अन्तिम बार कहता हूँ शान्त हो जाओ । यज्ञ में बाधा न डालो ।

शिशुपाल : कृष्ण धमकी मत दो, युद्ध करो—युद्ध ।

कृष्ण : युद्ध की उत्तेजना न दो ।

शिशुपाल : नीच ! कायर ! (तलवार निकालते हैं)

कृष्ण : अच्छी बात है । दुष्ट जरासन्ध के बाद तुम्हीं बचे थे । वहीं खड़े रहो । आलिंगन कर लो अपनी मृत्यु को ।

(सुदर्शन चक्र पिशुशाल की ओर फेंकते हैं । चक्र लगते ही 'आह' करक चन्देरी-नरेश गिरते हैं ।)

कृष्ण : सभासदों, शिशुपाल का बध मैं पहले ही करता, पर इनकी माँ के सामने मैंने इसके सौ अपराध क्षमा करने का वचन दिया था । लेकिन शिशुपाल अहंकार में सब कुछ भूल बैठा । इसके अपराध सौ से ऊपर हो चुके । उसी आज इसे मरना पड़ा । आप लोग मुझे क्षमा करें ।

युधिष्ठिर : अर्जुन, सोचने से क्या होगा । श्रीकृष्ण की आरती उतारो और उन्हें प्रथम तिलक दो ।

(अर्जुन श्रीकृष्ण की आरती उतारते हैं और तिलक करते है ।)

सब : जय ! पुरुषोत्तम श्रीकृणचन्द्र की जय !

(यवनिका पतन)

—समाप्त—